बीड़ी: एक संक्षिप्त इतिहास

डॉ. प्रणय लाल

भारत में धूम्रपान के बाज़ार में बीड़ी का बोलबाला है। एक सिगरेट के मुकाबले दस बीड़ियां पी जाती हैं। इसके आविष्कार के बाद करीब 140 वर्षों में, और बड़े पैमाने पर उत्पादन के 100 वर्षों से भी कम समय में बीड़ी भारतीय उपमहाद्वीप में मौत का एक अग्रणी दूत बन गई है।

किसी पत्ती में अन-उपचारित मोटी तंबाकू को लपटेकर धागे से बांधकर बनाई गई सिगरेट ही बीड़ी है। भारत में धूम्रपान के बाज़ार में बीड़ी का बोलबाला है। एक सिगरेट के मुकाबले दस बीड़ियां पी जाती हैं। बीड़ी का नाम दरअसल गुजरात व राजस्थान के मारवाड़ इलाके में व्यापारी समुदाय द्वारा बोली जाने वाली मारवाड़ी भाषा के शब्द बीड़ा से बना है। बीड़ा पान के पत्ते में सुपारी व अन्य चीज़ों को लपेटकर बनाया जाता है। यह सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक है और समूचे भारतीय उपमहाद्वीप में इसे सम्मान का द्योतक माना जाता है। धीरे-धीरे बीड़ी को इसके समकक्ष माना जाने लगा है। भारतीय चिकित्सा प्रणालियों, खास तौर से आयुर्वेद में पत्तियों में लिपटी जड़ी-बूटियों के सुगंधित धुएं का सेवन करना स्वास्थ्यवर्धक माना जाता है। तंबाकू के औषधीय गुणों के बारे में मिथकों और आयुर्वेद में इस तरह से धुएं के सेवन की अनुमति ने मिलकर बीड़ी को यहां की संस्कृतियों में आसानी से स्वीकार्य बनाने की भूमिका अदा की है।

बीड़ी और बीड़ी उद्योग

इस बात का कोई ऐतिहासिक रिकॉर्ड नहीं है कि भारत में ठीक-ठीक किस समय पत्ती में लपेटकर तंबाकू पीने का चलन शुरू हुआ था। तंबाकू की खेती दक्षिण गुजरात में सत्रहवीं सदी के अंत में शुरू हुई थी। स्थानीय लोगों में हुक्का पीने का काफी चलन था। एक ही जाति या उप-जाति के पुरुष शाम के समय बैठकर एक ही हुक्के को पीया करते थे। हुक्के को उठाकर यहां-वहां रखना मुश्किल होता था, इसलिए इसका एक सस्ता व 'पोर्टेबल' रूप विकसित किया गया - चिलम। बीड़ी का विकास इसके तत्काल बाद हुआ था - संभवतः गुजरात के खेड़ा व पंचमहल ज़िलों में जहां तंबाकू की खेती काफी अधिक होती थी, मज़दूर बची-खुची तंबाकू को कचनार (*बोहिनिया वैरिगेटा*) की पत्ती में लपेटकर फुरसत के समय पीया करते थे। देश के विभिन्न समुदायों ने आम, कटहल, केला, साल, केवड़ा, और पलाश जैसी विभिन्न पत्तियों को इस काम के लिए आज़माया है।

शुरूआत में गुजरात के समुदाय खुद अपने उपयोग के लिए ही बीड़ी बनाते थे मगर इनकी बढ़ती लोकप्रियता का परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे कुछ लोग इसे एक कुटीर उद्योग के तौर पर विकसित करने को प्रेरित हुए। जल्द ही स्थानीय स्तर पर निर्मित बीड़ियां हुक्के से ज़्यादा लोकप्रिय हो गईं। एक कारण तो यह था कि हुक्का को साझा करने में जो बाधाएं थीं वह बीड़ी में नहीं थीं। लोग किसी की भी धार्मिक या जातिगत भावनाओं को आहत किए बगैर साथ बैठकर बीड़ी पी सकते थे। इसके अलावा इसमें ज़्यादा तामझाम भी नहीं लगता था जो हुक्के के लिए ज़रूरी था। हुक्का सुलगाने के लिए काफी तैयारी करनी पड़ती थी। इसके अलावा, बीड़ियों को यहां-वहां ले जाना भी आसान था।

गुजरात में बीड़ी उद्योग का शुरुआती मॉडल यह था कि व्यापारी और उनके मज़दूर अपनी बीड़ी खुद ही बनाते थे। वे इन्हें एक थाली में रखकर तंबाकू व माचिस के साथ हाट में बेचते थे। जो गुजराती परिवार मुंबई में बस चुके थे, उन्होंने देखा कि बीड़ी के धंधे में अच्छी संभावनाएं हैं। इन लोगों ने बड़े पैमाने पर बीड़ी का

उत्पादन शुरू कर दिया।

बीड़ी जल्दी ही मुंबई से बाहर देश के अन्य इलाकों में पहुंच गई। मगर 1900 तक बीड़ी का उत्पादन मूलतः मुंबई और दक्षिणी गुजरात में ही सिमटा हुआ था। गुजरात में 1899 के भयंकर सूखे ने लोगों को जीविका की तलाश में पलायन करने को मजबूर कर दिया। इसके बाद ही बीड़ी एक लघु उद्योग बन गई। आधुनिक बीड़ी उद्योग के जनक संभवतः अहमदाबाद के गोमतीपुर ज़िले के मोहनलाल पटेल थे। मोहनलाल पटेल गुजरात से जबलपुर जाकर बस गए थे। वे बंगाल-नागपुर राजमार्ग पर बिनेकी व बर्गी कस्बों में छोटे-मोटे ठेके लिया करते थे। जल्दी ही उनका चचेरा भाई हरगोविंददास भी उनके साथ आ गया। दोनों भाई ठेके हासिल करने और छोटा-मोटा व्यापार करने के लिए जबलपुर जाया करते थे। जबलपुर में उन्होंने देखा कि बीड़ी सिर्फ भाटिया मोरारजी की परचून की दुकान में मिलती है। मोरारजी एक और मारवाड़ी थे जो अकाल से बचकर जबलपुर पहुंचे थे। मोरारजी बीड़ी बंबई से लाया करते थे और अच्छा मुनाफा कमाकर जबलपुर के संभ्रांत लोगों को बेचा करते थे।

पटेल बंधुओं को जबलपुर में बीड़ी बनाने के काम की अच्छी गुंजाइश नज़र आई। शुरुआत में कच्चा माल - तंबाकू और कचनार की पत्तियां - अहमदाबाद से आता था। जल्दी ही पटेल बंधुओं द्वारा निर्मित बीड़ियां चल निकलीं। उनकी ज़बर्दस्त सफलता का राज़ वास्तव में उनकी एक उल्लेखनीय खोज में है। मोहनलाल और हरगोविंददास ने खोज निकाला कि तेंदू पत्ता बीड़ी बनाने के लिए बहुत बढ़िया होता है। जबलपुर के बरबाद जंगलों में तेंदू खूब पाया जाता था और इसकी पत्तियां कचनार से बेहतर थीं। तेंदू वृक्ष (*डायोस्पायरस मेलोनोज़ायलॉन*) प्रायद्वीपीय भारत के बरबाद पतझड़ी जंगलों में बहुतायत से पाया जाता है। जब रेल्वे स्लीपर्स बनाने के लिए जंगलों से साल के वृक्ष और अन्य इमारती लकड़ी वाले वृक्ष साफ कर दिए गए, तब तेंदू खूब फलने-फूलने लगा।

पटेल बंधुओं द्वारा निर्मित बीड़ियों की ज़बर्दस्त सफलता का राज़ वास्तव में एक उल्लेखनीय खोज में है। पटेल बंधुओं ने खोज निकाला कि तेंदू पत्ता बीड़ी बनाने के लिए बहुत बढ़िया होता है।

एक महत्वपूर्ण बात यह थी कि तेंदू पत्ता उस समय खूब उपलब्ध होता था जब तंबाकू की फसल तैयार होती थी और उपचारित की जाती थी जबकि उस समय बाकी सारे पेड़ों की पत्तियां झड़ चुकी होती थीं। तेंदू पत्ते में एक उम्दा रैपर के सारे गुण मौजूद हैं - इसके पत्ते काफी बड़े-बड़े और लचीले होते हैं और लपेटने पर टूटते नहीं हैं, चाहे सूख चुके हों। तेंदू की पत्तियां चिकनी, चमड़े जैसी और सपाट होती हैं। और ये तंबाकू की गंध के साथ मेल खाती हैं, उसमें बाधक नहीं बनतीं। लिहाज़ा तेंदू पत्ता में लिपटी बीड़ियां जल्दी ही उपभोक्ताओं में लोकप्रिय हो गईं।

मध्य भारत में 1899 में रेल्वे के त्वरित विस्तार ने इन क्षेत्रों के लिए तंबाकू के नए-नए बाज़ार खोल दिए जिसके चलते मोहनलाल और हरगोविंददास के लिए तंबाकू सस्ते में प्राप्त करना संभव हो गया और साथ ही बीड़ियों को बेचना भी सुगम हो गया। इससे पहले बीड़ी का कोई ब्रांड नहीं होता था। बीड़ी का सबसे पहला ट्रेडमार्क हरिभाई देसाई ने 1901 में कचनार पत्तियों में लिपटी बीड़ियों के लिए बंबई में पंजीकृत किया था। दूसरी ओर मोहनलाल और हरिगोविंददास ने अपना ट्रेडमार्क 1902 में पंजीकृत करवाया था।

1903 में बंगाल-नागपुर रेल्वे की कड़ी पश्चिम की ओर नागपुर सेक्टर में स्थापित हुई। इसके चलते बीड़ी उत्पादन का एक और केंद्र गोंदिया में उभरा। 1912 से 1918 के बीच रेल्वे के त्वरित विस्तार ने विदर्भ, तेलंगाना, हैदराबाद, मैंगलोर और मद्रास में ऐसे कई बीड़ी उत्पादन केंद्रों को जन्म दिया। बीड़ी संस्कृति जल्दी ही पूरे देश में फैली और शहरी व ग्रामीण अनौपचारिक अर्थ व्यवस्थाओं में पैर जमा लिए। रेल्वे के विकास के साथ-साथ धूम्रपान की आदत शहरों और कस्बों से दूर-दराज़ के गांवों तक पहुंची।

साम्राज्यवादी माल का बहिष्कार करने के स्वदेशी आंदोलन, जिसे महात्मा गांधी ने शुरू किया था, ने भारतीय कुटीर उद्योग की प्रतिष्ठा को बढ़ाने का काम किया। बीड़ी को तब बहुत प्रोत्साहन मिला जब शिक्षित मध्यम वर्ग ने स्वदेशी आंदोलन के साथ एकजुटता दर्शाने के लिए बीड़ी पीना शुरू कर दिया। हसन इमाम जैसे कई मुस्लिम नेताओं ने खुलकर बीड़ी का समर्थन करते हुए कहा था कि "विदेशी सिगरेट हराम है। सिगरेट छोड़ो, बीड़ी पीओ।"

द्वितीय विश्व युद्ध के आसापास बीड़ी उद्योग शहरी झुग्गी बस्तियों और ग्रामीण इलाकों में एक महत्वपूर्ण व विस्तृत कुटीर उद्योग बन गया था। भारतीय जवान जब विदेशी भूमि पर लड़ने जाते थे तो बीड़ी उनके राशन का हिस्सा होती थी। द्वितीय विश्व युद्ध शुरू होने पर बीड़ी उत्पादन में वृद्धि हुई। बीड़ी की मांग इतनी तेज़ी से बढ़ी कि नई-नई इकाइयां शुरू करना बीड़ी निर्माताओं के लिए रोज़ की बात हो गई। बीड़ी ने बहुत अल्प अवधि में सामाजिक स्वीकार्यता हासिल कर ली और यह उद्योग छोटे भारतीय व्यापारियों के लिए एक अनुकरणीय उदाहरण बन गया। बीड़ी बनाने में मानव हुनर के अलावा लगभग कोई प्रोसेसिंग तकनीक नहीं लगती।

1940 के दशक में बीड़ी उद्योग को बढ़ावा मूलतः पश्चिमी भारत के कपड़ा उत्पादक शहरों की झुग्गी बस्तियों से मिला। प्रवासी मज़दूर और उनके परिवार मुंबई, सूरत, भिवंडी और शोलापुर पहुंचते थे। बुनकर व लूम ऑपरेटर्स के परिवार के लोग अपनी आमदनी थोड़ी बढ़ाने के लिए दिन भर बैठकर बीड़ियां बनाया करते थे। 1960 के दशक में पॉवरलूम के आगमन के साथ कई बुनकर अपने रोज़गार से हाथ धो बैठे। काम के अभाव के चलते उन्हें इन कपड़ा उत्पादक शहरों से एक बार फिर पलायन करना पड़ा। तेलंगाना इलाके में इनमें से कई लोगों को बीड़ी उद्योग में काम मिल गया। आज भी इस इलाके के 60 प्रतिशत बीड़ी श्रमिक विस्थापित बुनकर समुदाय (पद्मशाली) से हैं, जबकि शेष दलित व मुस्लिम समुदाय से हैं।

1950 व 1960 के दशक तक बीड़ी के इतने सारे ब्रांड हो गए थे कि बीड़ी निर्माताओं के बीच ज़बर्दस्त होड़ शुरू हो गई। कंपनियों ने अपने-अपने ब्रांड को बनाने व जमाने पर काम करना शुरू किया ताकि ब्रांड-निष्ठा विकसित हो सके, जैसे पश्चिमी देशों में सिगरेट कंपनियां करती हैं। बीड़ी ब्रांड नामों में तंबाकू के औषधीय गुणों के बखान किए जाने लगे (जीवन छाप), देशभक्ति का आव्हान किया जाने लगा (हिंदमाता छाप), नौजवानों को लुभाने के लिए आधुनिक नामों का उपयोग किया गया (टेलीफोन, ट्रेन, टेलीग्राम) और फिल्म कलाकारों, खिलाड़ियों तथा पहलवानों से एंडोर्समेंट का सहारा लिया गया।

बीड़ी इतनी ज़्यादा लोकप्रिय हो गई कि शक्तिशाली सिगरेट उद्योग में खलबली मच गई। बीड़ियों का एक महत्वपूर्ण कारक क्वालिटी बन गया और उत्पाद को उसके उत्पादन के स्थान तथा कच्चे माल की गुणवत्ता से पहचाना जाने लगा। उदाहरण के लिए उड़ीसा का तेंदू पत्ता कई अन्य प्रांतों के पत्ते से बेहतर माना जाता है। इसी प्रकार से तंबाकू के मामले में भी उसके उत्पादन का स्थान, खुरदरापन और उपचार की तकनीक का अपना महत्व स्थापित हुआ। बीड़ी उद्योग को तंबाकू कृषि संस्थानों की स्थापना से भी प्रोत्साहन मिला - इस तरह का एक संस्थान तो आणंद, गुजरात में खासकर बीड़ी तंबाकू से सम्बंधित था। इसके अलावा तेंदू पत्ता दोहन की केंद्रीय व

प्रांतीय नीतियों ने भी इसमें योगदान दिया।

बीड़ी तंबाकू का उत्पादन मूलतः गुजरात के खेड़ा ज़िले में, और कर्नाटक के बेलगाम और निपाणी में केंद्रित है। दूसरी ओर बीड़ी उत्पादन के अधिकांश केंद्र मैंगलोर, मैसूर और निपाणी (कर्नाटक), पुणे व नासिक (महाराष्ट्र), जबलपुर व दमोह (म.प्र.), रायपुर (छत्तीसगढ़), तिरुनेलवेली व चेन्नै (तमिलनाडु), कुन्नूर (केरल) और निज़ामाबाद, करीमनगर व वारंगल (आंध्र प्रदेश) में स्थित हैं।

1970 के मध्य दशक तक बीड़ी उत्पादन लगभग उस स्तर पर पहुंच चुका था जहां आज है - करीब 800 अरब से 12 खरब बीड़ियां प्रति वर्ष। इस दौरान एक ओर तो नए उत्पादन केंद्र विकसित हुए, वहीं दूसरी ओर, विदर्भ जैसे कई पुराने उत्पादन केंद्र बिखर गए। मध्य प्रदेश जैसे सशक्त उत्पादक, जो 1980 के दशक में देश की 50 प्रतिशत से ज़्यादा बीड़ियों का उत्पादन करते थे, भी बंगाल, बिहार व उड़ीसा में नए विकसित होते केंद्रों के सामने कमज़ोर पड़ गए हैं। इन प्रांतों में मज़दूर सस्ते हैं। बीड़ी उद्योग को सतत प्रतिस्पर्धा और नए कानूनों ने काफी प्रभावित किया है (जैसे बाल श्रमिक प्रतिबंध कानून), मगर मध्य 1980 के दशक से यह उद्योग कमोबेश स्थिर अवस्था में चला आ रहा है। बीड़ी उद्योग स्थानीय व राष्ट्रीय स्तर पर काफी राजनैतिक ताकत रखता है और आधुनिकीकरण (जैसे मशीनीकरण, टैक्स का भुगतान या श्रमिकों के लिए बेहतर हालात) के किसी भी प्रयास का ज़ोरदार विरोध करता है।

निष्कर्ष

तंबाकू के उपयोग और इसके सेवन के विभिन्न रूपों (जैसे बीड़ी) में कुछ भी पारंपरिक नहीं है। बीड़ी का आविष्कार और इसकी ज़बर्दस्त सफलता कई सारे संयोगों का नतीजा है। इसके अलावा संस्थानों की स्थापना, सरकार की हिमायती नीतियों और नियमन के अभाव ने मिलकर बीड़ी उद्योग को जीवित रहने में मदद की है। इसके आविष्कार के बाद करीब 140 वर्षों में, और बड़े पैमाने पर उत्पादन के 100 वर्षों से भी कम समय में बीड़ी भारतीय उपमहाद्वीप में मौत का एक अग्रणी दूत बन गई है। बीड़ी की वास्तविक सफलता तो इस बात में है कि स्थानीय समुदायों ने इसे कितनी सहजता से स्वीकार कर लिया है और किस तरह से इतनी छोटी अवधि में यह लोककथाओं में और परंपराओं में रच-बस गई है। ***(स्रोत फीचर्स)***

अगले अंक में

स्रोत सितंबर 2009
अंक 248

- अंध विश्वास के विरुद्ध जादूगर
- हिवरेबाज़ार का चमत्कार
- आंखों देखा पूर्ण सूर्य ग्रहण
- कांच पर जमी बूंदों की पहेली
- विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की सामाजिक प्रासंगिकता